लेख

साभार: पोस्टर विमेन, जुबान प्रकाशन

नियामक मानदंडों और शारीरिक परिभाषाओं पर कुछ सवाल

शालिनी महाजन

इस बात पर अभी तक सहमति नहीं है कि *लेस्बियन* महिलाओं, *लेस्बियन* एवं *बायसेक्शुअल* महिलाओं, *एल.जी.बी.टी* समुदाय और फिर *क्वीयर* महिलाओं या *ट्रांसजेंडर* लोगों के मुद्दों पर महिला आंदोलन में हमने कब बात करना शुरू किया। लेकिन पिछले कुछ समय में, हमारे शब्दों और उन्हें व्यक्त करने के तरीकों में कई प्रकार के बदलाव आए हैं। इस लेख का उद्देश्य न तो ऐतिहासिक वृत्तांत सुनाना है और न ही इस मुद्दे का विस्तृत उल्लेख करना है, क्योंकि इन दोनों ही मुद्दों पर बात करने के लिए एक पूरी किताब लिखी जा सकती है। लेकिन मैं आशा करती हूं कि इस लेख के माध्यम से पिछले कुछ समय में उभरे उन राजनैतिक मुद्दों पर प्रकाश डाल सकूं जो क्वीयर - महिलावादी संगठनों (विशेष रूप से *लेस्बियन, बायसेक्शुअल* और *ट्रांसजेंडर*) के बीच परस्पर चर्चाओं और भारतीय महिलावादी आंदोलन से जन्मे हैं।

किसी भी एक जगह से शुरूआत करना मुश्किल है, पर फिर भी 1987 में, भोपाल की महिला पुलिस अधिकारियों, लीला और उर्मिला को नौकरी पर वापस रखे जाने के संदर्भ में चर्चाएं एवं उनके सहयोग के लिए लिखे गए पत्र शुरूआती समय का एक महत्वपूर्ण चरण रहा।

मैं मानती हूं कि सवाल यह नहीं है कि आंदोलन में कितनी लेस्बियन महिलाएं शामिल हैं या नहीं (वैसे वे कब शामिल नहीं थीं) या फिर यह कि वे सार्वजनिक स्तर पर अपनी यौनिकता अभिव्यक्त करती हैं कि नहीं। अन्य सभी हाशिये के समुदायों की तरह ही, यहां भी सवाल यही है कि (महिला आंदोलनों में) जिस महिला की बात की जा रही है, वह लेस्बियन या ट्रांसजेंडर हो सकती है या नहीं।

मैं महज़ मज़ाक में इस मुद्दे को केन्द्रीय सवाल नहीं बना रही। 'महिला' शब्द की परिभाषा में लेस्बियन महिलाओं को शामिल करने के लिए कई बार इन परिभाषाओं को बदला गया है।

अलग शब्दों में कहें तो, महिलावादी आंदोलन में 'महिला' की पहचान निर्धारित करना सबसे जटिल चुनौती रही है। दलित महिलाओं को हमेशा यही लगा (या उन्हें ऐसा महसूस कराया जाता है) कि वे दलित हैं ही नहीं। ऐसा ही अन्य समुदाय की औरतों, जैसे मुसलमान या अन्य धार्मिक/सामुदायिक पहचान की औरतों को भी महसूस

हुआ, क्योंकि उनकी पहचान उनके वर्ग से की जाती रही (जिसके परिणामस्वरूप कई बार कामगार महिलाओं को लगा कि वे दरकिनार हो गईं), उनके शहरी/ग्रामीण/कस्बे की निवासी होने के नाते की जाती रही उनके शादीशुदा होने या न होने से की गई। (शादीशुदा, परित्यक्ता, अलग रहने वाली, तलाक़शुदा, एकल, कभी शादी न करने की इच्छुक...), उनके उत्पीड़न की कठोरता जिसके अंतर्गत एक यौन कर्मी, जो अपने काम की परिस्थितियों और उसमें हिंसा से मुक्ति के विषय में बात कर रही थी, के मुकाबले (देह व्यापार के परिणामस्वरूप) वेश्यावृत्ति में ज़बरदस्ती धकेली गई महिला पर अधिक दया दिखाई जाती रही। और इसी प्रकार के अन्य कई उदाहरण।

उपरोक्त विषयों से जुड़ा राजनैतिक सवाल यह है कि शुरूआती समय में ही यह पता चल गया था कि हांलांकि हम सभी नारीवादी थे (अपनी-अपनी तरह के) और कार्यकर्ता थे (हम में से काफी लोग अन्य आंदोलनों से आए थे, जिसके कारण 1980 के दशक में नारीवादी आंदोलन को उसका रंगीन एवं जीवंत स्वरूप मिला), देश में कई प्रकार की महिलाएं थीं और कई नारीवादी आंदोलन भी। हमारे लिए ज़रूरी था कि हम जल्द से जल्द इस विभाजन की पहचान कर अपनी ताकतें मिलाकर अपनी अपनी राजनीति को पुनः परिभाषित करते। क्योंकि महिलाएं होने के साथ-साथ, हमारी वास्तविक्ताओं में कई अन्य पहचानें जुड़ीं थीं, जिन्हें हम नारीवादी आंदोलन के लिए पीछे छोड़ने को तैयार नहीं थे।

अपने मुद्दों और अपनी राजनीति का मसौदा पुनः तैयार करने की इस प्रक्रिया में लेस्बियन महिला ने काफी देर से प्रवेश किया। परंतु पिछले एक दशक में (एक-दो साल इधर उधर होने के अतिरिक्त), इसका काफी प्रभाव रहा है और इस लेख में मैं इसी से संबंधित कुछ मुद्दों की चर्चा करूंगी।

लेस्बियन और बायसेक्शुअल मुद्दों पर संगठनात्मक कार्य की शुरुआत 1980 के दशक के अंत से, दिल्ली समूह व कुछ मुंबई की महिलाओं के साथ हुई। फिर दिल्ली में 1991 में सखी समूह की स्थापना हुई। स्त्री संगम (जो अब लेबिया के नाम से जाना जाता है) 1995 में गठित हुआ जब देश के कुछ अन्य शहरों में भी समूहों का गठन शुरू हो गया, जैसे, पुणे, दिल्ली, कोलकाता, बंगलुरू, केरल और फिर वडोदरा में भी।

इन समूहों ने अलग अलग कार्य शैली और संगठनात्मक रूप से काम किया, जिनमें से कुछ का यहां वर्णन करना उपयुक्त होगा।

- स्वायत्त गैर-फंड वाले संगठन जैसे मुंबई में स्त्री संगम, पुणे में ओलावा, बंगलुरू में प्रेरणा (जिनमें से कुछ को पूर्व स्थापित महिला संगठनों से सहयोग मिला और कुछ को नहीं)।
- स्वायत्त संगठन, जिन्होंने कुछ विशिष्ट काम करने के लिए आर्थिक सहयोग लिया या जो पंजीकृत हैं, जैसे कोलकाता में सैफो फ़ॉर इक्वॉलिटि, केरल में सहयात्रिका और वडोदरा में प्रेरणा।
- सेवाएं प्रदान करने वाली गैर सरकारी संस्थाएं (जो *एल.जी.बी.टी.* समूहों या मानवाधिकार समूहों के अंतर्गत ही गठित हुए), जैसे दिल्ली में संगिनी (नाज़ फाउन्डेशन के अंतर्गत), मुंबई में आंचल (शुरूआत में इंडिया सेंटर फॉर ह्यूमन राईट्स एंड लॉ के अंतर्गत, जो बाद में स्वतंत्र रूप से काम करने लगी), मुंबई में ही हमजिंसी (यह भी इंडिया सेंटर फॉर ह्यूमन राईट्स एंड लॉ के अंतर्गत) और बंगलुरू में लैस्बिट ग्रुप (संगमा के अंतर्गत)।
- यौनिकता अधिकारों के मुद्दों पर काम करने वाली संस्थाएं, जैसे दिल्ली में क्रिया और तारशी।
- विशिष्ट नेटवर्क एवं मंच (जो किसी खास मुद्दे या सांझी राजनीति पर आधारित थे) जैसे, दिल्ली में कलेरी एवं वॉईसिज़ अगेन्स्ट 377 तथा कोलकाता में सैफो फॉर इक्वॉलिटि।

इसके अतिरिक्त कई समूह अन्य महिला संगठनों तथा एल.जी.बी.टी. समूहों के साथ मिलकर विभिन्न नेटवर्कों तथा मंचों में भी काम करते हैं।

इन समूहों के काम का एक मुख्य अंश रहा है चाहत और अधिकारों के विषय में अभियान चलाना। इसके साथ-साथ, *एल.बी.टी.* समूहों के मुद्दों में विभिन्न स्तरों पर फैलाव आता रहा है जैसा - नियामक मानदंडों पर सवाल

उठाना, हमारे अधिकारों की मांग रखने और शारीरिक परिवेश को स्पष्ट करने के लिए राजनैतिक भाषा का विकास करना, वर्तमान आंदोलनों एवं अभियानों के साथ साझे मुद्दे तैयार करना और उनके साथ मिलकर काम करना, एक प्रगतिशील एवं बहुमुखी राजनीति का विकास, विविध सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों के लिए उपयुक्त जगह बनाना और क्वीयर समुदाय की विशिष्ट आवश्यकताओं के लिए सेवाएं प्रदान करना।

इसके अतिरिक्त, क्वीयर एवं क्वीयर नारीवादी आंदोलनों ने विभिन्न प्रकार के दस्तावेज़, किताबें, अध्ययन और रिपोर्ट प्रकाशित किए हैं जो यह समझने में हमारी मदद करते हैं कि हम किस दिशा में बढ़ रहे हैं। इनमें से कई प्रकाशन अन्य संस्थाओं के साथ मिलकर छापे गए हैं, या अभियानों एवं बढ़े संगठनों का हिस्सा रहे हैं। इस तरह यौनिकता एवं जेंडर के मुद्दे धीरे-धीरे बदलाव की नई राजनीति का हिस्सा बन रहे हैं।

अब तक इस विस्तृत काम के माध्यम से कुछ महत्वपूर्ण राजनैतिक मुद्दे उठाए गए हैं:

- उन महिलाओं के विषय में बात करना जो शादी नहीं करना चाहतीं या अपने पैतृक या वैवाहिक घर से बाहर के क्षेत्र के अधिकारों के विषय में बात करना चाहती हैं; विवाह के सामाजिक ढांचे और नियामक विषमलैंगिकता का आलोचनात्मक विश्लेषण; 'निजी ही राजनैतिक है' को दोहराते हुए 'राजनैतिक ही निजी है' अवधारणा का भी पुर्नावलोकन, जिसके अंतर्गत यौनिकता तथा विवाह संबंधी विशेषाधिकारों पर ध्यान आकर्षित किया गया (जैसा कि पहले जाति, वर्ग और समुदाय के संदर्भ में किया गया था)।
- औरतों की चाहत और यौनिकता के मुद्दों को चर्चा में लाना, जो केवल उन पर होने वाले उत्पीड़न या हिंसा के नज़रिए पर ही केन्द्रित न हों।
- शरीर को एक कामुक विषय वस्तु एवं उसकी विविधता को पहचानना (औरतों और मर्दानगी के विषयों पर चर्चा से ही वाद-विवाद बदल जाता है)।
- 'महिला' की अवधारणा पर सवाल उठाना जिसके अंतर्गत लिंग/जेंडर के उन नियामक मानदंडों पर चर्चा हुई जिसे भारतीय नारीवादी आंदोलन ने भी स्वीकार कर लिया था।

इन मुद्दों का और अधिक विस्तार से अध्ययन करना आवश्यक है।

सबसे पहले नियामक विषमलैंगिकता का मुद्दा। नारीवादी आंदोलन ने हमेशा से पितृसत्ता एवं उससे जुड़े सामाजिक ढांचों की आलोचना की है, खासकर विवाह के सामाजिक ढांचे की। महिला मज़दूरी, उत्पादकता एवं प्रजनन, घरेलू हिंसा, जेंडर नियामक मानदंड एवं रूढ़िवादी ढांचे और उन्हें तोड़ना पिछले तीन दशकों के अभियानों के महत्वपूर्ण मुद्दे रहे हैं। विवाह के ढांचे में महिलाओं का दर्ज़ा अक्सर इस पितृसत्तात्मक ढांचे से मिलने वाली ताकत के नज़रिए से देखा गया है।

पिछले कुछ वर्षों में विवाह के ढांचे की आलोचना एक ऐसे ढांचे के रूप में की गई है जो महिलाओं को भी कुछ सामाजिक एवं व्यक्तिगत शक्तियां प्रदान करता है और विषमलैंगिक-पितृसत्ता को बढ़ावा देते हुए उसका नियंत्रण भी करता है। यह आलोचना इस ढांचे से बाहर रह रहे लोगों ने दी है, अधिकतर क्वीयर तथा यौन कर्मियों के आंदोलन द्वारा, जो अपने आप को उस समाज के हाशिए पर खड़ा महसूस करते हैं, जिस समाज में विवाह और उससे परिभाषित परिवार को समाज एवं संस्कृति का केन्द्र माना जाता है। यहां यह कहना आवश्यक है कि स्वायत्त नारीवादी आंदोलन, जिसे मुख्यधारा महिला आंदोलन का उग्र-रूपी किनारा माना जाता है, ने इन विषयों पर काफी तत्परता से चर्चा बढ़ाई है और वे इन्हें अपनी राजनीति में शामिल करने के लिए भी तैयार हैं।

इस मुद्दे के आधार पर विवाह की आलोचना करने का मतलब है उस सामाजिक एवं सांस्कृतिक शक्ति को चुनौती देना, जो विवाह के ज़रिए औरतों को मिलती है, चाहें विवाह के रिश्ते में बंधे दोनों व्यक्तियों में से उन्हें मिली शक्ति न्यूनतम ही क्यों न हो। यह शक्ति विभिन्न सामाजिक एवं कानूनी अधिकारों का भी कारण बनी है, जो उन औरतों को उपलब्ध नहीं है जो विवाह के ढांचें में बंधने के लिए तैयार नहीं हैं या उससे बाहर छूट गई हैं।

लेकिन विवाह के आलोचनात्मक विश्लेषण के कारण समलैंगिक विवाह के मुद्दे से संबंधित कुछ विशिष्ट चर्चाओं

को भी बढ़ावा मिला है। एक महत्वपूर्ण सवाल, जो नारीवादियों ने भी क्वीयर समूहों से पूछा है— यदि आप विवाह का विरोध करते हैं, और अगर वह विषमलैंगिक पितृसत्ता का इतना मज़बूत स्तंभ है, तो आप समलैंगिक विवाह की मांग क्यों करते हैं? क्या लेस्बियन एवं गे समुदाय का इससे दूर ही रहना उचित नहीं है?

इस प्रश्न के विविध उत्तर रहे हैं जो केवल क्वीयर-नारीवादियों ने ही नहीं दिए हैं, बल्कि अन्य समूहों ने भी दिए हैं। हां, हमने विवाह के ढांचे की आलोचना तो की है और हम इसे एक दमनकारी ढांचा मानते हैं, परंतु वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में, अपने जन्मदायक/दत्तक परिवार के अतिरिक्त परिवार स्थापित करने का यही एक ढांचा उपलब्ध है और इसी ढांचे के अंतर्गत वे अधिकार प्राप्त किए जा सकते हैं जो केवल वैवाहिक युगल को उपलब्ध हैं। तो जब तक कुछ लोगों को यह अधिकार उपलब्ध है कि वे विवाह कर सकें, उनके रिश्ते को सामाजिक एवं कानूनी मान्यता प्राप्त हो, तब तक हमारा मानना है कि यह अधिकार प्रत्येक व्यक्ति को, बिना लैंगिकता का भेदभाव किए उपलब्ध होना चाहिए।

यहां उपयुक्त उदाहरण होगा, देश भर में घर से भाग कर "शादी" करने वाली लेस्बियन औरतों का, जिसे मीडिया बड़ी दृढ़ता से नियमित रूप से दिखाती है। देश के हर कोने से, शहरों व गांवों से, अपने परिवारों व समाज के विरोध का सामना करती हुई औरतें, अधिकतर बिना किसी सहयोग के, एक दूसरे के साथ रहने का प्रयास कर रही हैं, एक दूसरे के साथ रहने की अपनी चाह की अभिव्यक्ति कर रही हैं, शादी कर रहीं हैं और उन्हें अपने हिसाब से अपनी ज़िंदगी जीने का पूरा अधिकार है। जिन मामलों में वे ऐसा नहीं कर पा रही हैं, वहां वे परिवार छोड़ कर भाग जाती हैं, मीडिया को संपर्क करती हैं जिससे कि उनके परिवार उनके लिए खतरा न पैदा कर सकें, और कुछ दुःखद मामलों में एक साथ न रह पाने के कारण आत्महत्या करने के लिए भी विवश हो जाती हैं। जब तक वैवाहिक ढांचे हमारे समाज, संस्कृति और कानूनी परिवेश को परिभाषित करते रहेंगे, यही न्यायोचित होगा कि यह ढांचे सभी के लिए उपलब्ध हों, चाहें वे समलैंगिक हों या विषमलैंगिक।

साथ ही, हमारा यह आह्वान है कि यदि विभिन्न महिला आंदोलन हर प्रकार के विवाह और उससे मिलने वाले लाभों का अंत करने के लिए तैयार है, तो उन समुदायों के लिए विवाह की मांग करने की आवश्यकता नहीं है, जिन्हें वैसे भी यह ढांचा उपलब्ध नहीं है।

अब हम एक नज़र चाहत और एल.बी.टी. समूहों द्वारा इस विषय की अभिव्यक्ति पर डालते हैं। कई मायनों में, पहचान का आधार भी चाहत, शरीर, यौनिकता ही है। इसका यह मतलब नहीं है कि लेस्बियन की परिभाषा केवल इसी पर आधारित है, परंतु अन्य पहचानों, जिनमें हमारा जन्म होता है या जो हमारी परिस्थितियों के कारण हम से जुड़ जाती हैं, के मुकाबले इस संदर्भ में कुछ हद तक 'चुनाव' की भ्रांति होती है (यौन कर्मियों को भी चुनाव के इस सवाल का सामना करना पड़ता है जब वे 'सुधार' या 'पुनर्वास' कार्यक्रमों का हिस्सा बनना नहीं चाहते, बल्कि अपने अधिकारों व मांगों की बात करते हैं)। इस चर्चा का उद्देश्य यह स्थापित करना नहीं है कि कोई व्यक्ति जन्म से समलैंगिक होता है या समलैंगिक बन जाता है; यह सवाल कभी भी एल.बी.टी. संगठनों के लिए महत्वपूर्ण नहीं रहा है। लेकिन यह सवाल धार्मिक लोगों के लिए महत्वपूर्ण है (अगर कोई इस प्रवृत्ति के साथ जन्म लेता है, तो उसके पास और कोई चारा नहीं है; वह केवल ऐसा बर्ताव न करने का निर्णय ले सकता है) या फिर समलैंगिक-विरोधी भय रखने वालों के लिए (किसी हादसे/विकृति/या नाकामयाबी के कारण व्यक्ति ऐसा बन गया हो, क्योंकि यह अप्राकृतिक है और इसलिए सामान्य नहीं हो सकता) या फिर आनुवांशिक समलैंगिक-विरोधी भय रखने वालों के लिए (तो ऐसे जीन के कारण ऐसा होता है, हमें उसकी पहचान कर उसे नष्ट कर देना चाहिए)।

यहां एक साधारण तथ्य रखा जा रहा है कि लेस्बियन जीवन जीने का चुनाव करना, या अपनी लेस्बियन पहचान व्यक्त करना, अपने आप में 'बाहर आने' की एक प्रक्रिया है, क्योंकि इस पहचान को एक चुप्पी साध कर छुपा हुआ रखा जा सकता है। यह चुप्पी कई क्वीयर लोगों के लिए आज भी वास्तविकता है (तभी तक जब तक वे प्रत्यक्ष रूप से नियामक परिभाषाओं के अनुरूप न दिखते हों, जिससे जुड़ी अपनी समस्याएं हैं)। कुछ शुरूआती नारीवादियों की मान्यता के विरुद्ध, जो यह मानते थे कि यह चुप्पी भी एक

प्रकार की ताकत है क्योंकि इससे महिलाओं की स्थिति छुपी रहती है और सुरक्षित रहती है, आंदोलन के पिछले दशक में बार बार यह दोहराया गया है, और इन संगठनों के अनुभवों से यह प्रमाणित भी होता है कि अधिकतर क्वीयर औरतों के लिए यह चुप्पी हिंसात्मक है, ताकत देने वाली शक्ति नहीं और ज़्यादातर निजी स्थान (घरों व परिवारों के अंदर) हिंसा और शोषण के स्थान होते हैं।

इसलिए एल.बी.टी. अधिकारों के विषय पर बात करना भी एक प्रकार से आंदोलन के अंतर्गत/और पहचान स्थापित करने के संदर्भ में बाहर आने जैसा ही है, जिसके विषय में यदि बात न की जाती तो वह अदृश्य ही रहता।

लेकिन यहां चर्चाओं में केवल यौनिक शरीर की बात नहीं की गई, शरीर किस प्रकार का हो, इस अवधारणा को भी चुनौती दी गई। विभिन्न समूहों और उनके द्वारा बारीकी से चुनी गई परिभाषाओं ने हमारे शरीर के विषय में हमारी अवधारणाओं और समझ को बदलने में मदद की है, वह शरीर जिसे हमारी राजनीति बार बार परिभाषित करती है। दलित महिला के शरीर पर उच्च जाति के पुरुषों द्वारा की जाने वाली हिंसा और यौन कर्म संबंधी चर्चाओं के संदर्भ में यह परिभाषाएं दी जाती रही हैं। हिंदुत्व राजनीति की नारीवादी आलोचना में मुसलमान पुरुषों और महिलाओं तथा हिंदू पुरुषों के शरीरों की अवधारणा पर ध्यान आकर्षित करते हुए गुजरात नरसंहार के दौरान इसके उग्र स्वरूप का वर्णन किया गया है। नारीवादी लेखों में भारत-पाकिस्तान बंटवारे और उसके बाद की हिंसा के विश्लेषण ने भी हमारी समझ बढ़ाने में मदद की है।

वंश, राष्ट्र, समुदाय, वर्ग, जाति की अवधारणाओं विषयक हमारी समझ को विकसित करने में महिला और महिला शरीर का इन अवधारणाओं के अंतर्गत संदर्भ ने काफी मदद की है। विरोध की हमारी समझ भी इन्हीं शरीरों के विरोध प्रकट करने, बदलाव और ताकत पर आधारित रही है।

महिला/पारलिंगी शरीर के विषय ने इन चर्चाओं में महत्वपूर्ण पहलू जोड़े हैं, जिसमें चाहत के साथ-साथ स्त्री/पुरुष व्यक्तित्व का पहलू भी शामिल है। हांलांकि जेंडर भूमिकाओं और हमारे 'औरत बनने' की काफी आलोचना की गई है जिसका महिला आंदोलन ने विरोध भी किया है, कि औरतों या उनकी सुंदरता के क्या मानक निर्धारित किए गए हैं; परंतु साथ ही 'पुरुषत्व' और 'पुरुष व्यवहार' का भी काफी विश्लेषण हुआ है, और ज़्यादातर यही माना जाता है कि यह व्यवहार अवांछनीय है। (जो हमें सोचने पर विवश कर देता है कि यदि यह व्यवहार अवांछनीय है तो विषमलिंगी नारीवादी 'पुरुषत्व' और उनके वाहक पुरुषों के प्रति अपनी अनिच्छा को जीवन में कैसे स्वीकर कर लेते हैं? या यह सवाल पूछना गलत है, चूंकि इससे 'विषमलैंगिकता-विरोधी भय' या 'पुरुष-घृणा' जैसे विचारों का आभास होता है?)

सच तो यह है कि नारीवादियों की पुरुषत्व के प्रति यह विकलता उन महिलाओं के प्रति प्रकट होती है जो 'नारीत्व' के नियामक मानदंडों का पालन नहीं करतीं और यहीं से सवाल उठता है कि नारीवाद में खुद कितना नारीत्व है। कई पीढ़ियों से कई महिलाएं पुरुषत्व के प्रति दावे करती आई हैं (पर पुरुष होने की ताकत से नहीं, और इन दोनों में भेद स्थापित करना ज़रूरी है) और कर रही हैं। मेरे अनुमान से, हमारे बीच यह चर्चा 'बुच' और 'फैम' शब्दों के उपयोग से शुरू हुई। लेकिन यह चर्चा जल्द ही जटिल होने के साथ-साथ अत्यंत विवादपूर्ण बन गई। तो कुछ लोगों ने इन शब्दों में बदलाव करके 'बुची-फैम्स', 'फैम्मी-बुचेज़', 'फच' और 'बैम्मे' बना दिया, पर काफी औरतों ने इस शब्दावली को अपनाने से ही इंकार कर दिया, खासकर यदि चर्चा रिश्तों के अंदर दोनों व्यक्तियों की भूमिकाओं से संबंधित होती।

लेकिन इस विषय पर बढ़ती चर्चाओं में यह स्थापित हो गया कि पुरुषत्व और नारीत्व एक व्यक्ति की जेंडर पहचान, उसके अपने शरीर व व्यक्तित्व, उसकी जेंडर अभिव्यक्ति तथा जेंडर व्यवहार से संबंध रखते हैं। यह सभी मुद्दे अपने आप में काफी जटिल हैं लेकिन हमारे जीवन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण भी हैं क्योंकि हमारे आसपास की दुनिया इन्हें देखती है। चूंकि हमारे व्यक्तित्व तथा शरीर की अभिव्यक्ति सांस्कृतिक रूप से नियामक जेंडर पर आधारित है, हमारे लिए खुद को व्यक्त करने के खतरे और भी बढ़ जाते हैं। दुर्भाग्यपूर्ण बात यह है कि आम जीवन के तथ्य महिला आंदोलन में भी वैसे ही कायम हैं।

अतः सार्वजनिक एवं निजी स्तरों पर जेंडर व्यवहार के प्रति जेंडर विविधता तथा खुलापन अपनाने में समय

लगता है, हांलांकि समाज में रहने के लिए इन्हें मंजूरी प्राप्त रहती है। औरतों द्वारा पुरुषत्व व्यवहार को अक्सर पुरुषों की ताकत स्थापित करने का कारण बनाया जाता है, जो कि जेंडर जैसे जटिल मुद्दे की सरलीकृत व्याख्या है। इस अवधारणा को निरंतर चुनौती दी गई है और ट्रांसजेंडर समूहों व व्यक्तियों के साथ चर्चाओं ने इसमें अब तक अदृश्य कई पहलू जोड़ने में मदद की है।

इससे मैं अपने दूसरे मुख्य तर्क पर पहुंचती हूं, कि क्वीयर समूहों तथा राजनीति ने महिला आंदोलन/नों का मूल आधार बदल दिया है — उनका यह विचार की शरीर की एक निर्धारित परिभाषा है और उससे संबंधित राजनीति स्थिर है!

महिलाओं और उनके संदर्भ में वर्ग, समुदाय, जाति आदि को परिभाषित करने के अतिरिक्त, महिला आंदोलनों ने 'लिंग' एवं 'जेंडर' के बीच अंतर किया है, जिसके अंतर्गत यह समझने की कोशिश की गई है कि 'मर्द' और 'औरत' की अवधारणाएं स्थापित करने में विभिन्न सामाजिक प्रक्रियाओं का योगदान है जिनके कारण कई सामाजिक, सांस्कृतिक ताकतों का फ़र्क़ इनमें निहित बन जाता है। अतः विभिन्न अभियानों और उनकी राजनीति में विभिन्न स्तरों पर होने वाली सामाजिक प्रक्रियाओं के प्रभावों पर ध्यान दिया गया है, जो काफी निजी तथा ढांचागत मुद्दों को प्रभावित करते हैं; इसके अतिरिक्त, कैसे इन ताकत के मुद्दों व उन पर आधारित ढांचों से जुड़े मुद्दों को हल करके इस दुनिया को और अधिक तुल्य तथा न्यायसंगत बनाया जा सकता है।

पर अभी तक जो मुद्दा सुलझ नहीं पाया है, वह है यौन संबंधों के नियामक स्वरूप का मुद्दा कि हम निर्धारित प्रकार के शरीरों में जन्म लेते हैं, कि केवल दो लिंग ही संभव हैं — जिसके कारण कई लोगों को या उनकी यौन अभिव्यक्ति को 'अप्राकृतिक' घोषित कर दिया जाता है और जो नियामक विषमलैंगिकता का आधार बन जाता है, और जो हमारी चाहत को ज़बरदस्ती अपने 'विलोम' के प्रति आकर्षित होने के लिए विवश करता है।

पिछले कुछ वर्षों में एल.बी.टी. समूहों, ट्रांसजेंडर एवं हिजड़ा समूहों तथा कुछ नारीवादियों तथा नारीवादी समूहों ने यह मुद्दे उठाए हैं। यहां तक कि, सातवीं राष्ट्रीय महिला आंदोलनों की संगोष्ठी की तैयारियों के दौरान, हिजड़ा एवं अन्य ट्रांसजेंडर लोगों की भागीदारी एक ज्वलंत मुद्दा रहा। सितंबर 2006 में जब यह संगोष्ठी हुई तब तक काफी हद तक इस मुद्दे पर एक असंतोषजनक सहमति बन चुकी थी कि वे हिजड़ा एवं ट्रांसजेंडर लोग, जो राजनैतिक रूप से महिला के रूप में अभिव्यक्ति करते हैं, वे संगोष्ठी में भाग ले सकते हैं।

अंततः कई हिजड़ा एवं ट्रांसजेंडर लोगों ने संगोष्ठी में भाग लिया और उनके महिलाओं के मुद्दों की समानता पर काफी चर्चाएं भी हुईं। 'जेंडर पर सवाल' नामक एक सत्र में इस विषय पर चर्चा हुई कि क्या जन्म के आधार पर स्त्रीलिंग की श्रेणी को हटा दिया जाना चाहिए, और अगर हां तो महिला समूहों और कार्यकर्ताओं के लिए इसके क्या परिणाम होंगे। संगोष्ठी के समापन सत्र में महिला आंदोलनों के समक्ष इन चुनौतियों को स्वीकार किया गया और यह माना गया कि इससे 'महिला' होने के राजनैतिक विषय पर कई सवाल उठते हैं। इस संगोष्ठी के मंच से दलित महिलाओं, विकलांग महिलाओं, यौन कर्मियों के साथ-साथ लैस्बियन एवं ट्रांसजेंडर महिलाओं ने भी 'महिला' होने के नए आयामों के आधार पर समाज में अपनी जगह बनाने का आह्वान किया।

अब यहां से हम आगे कैसे बढ़ें? हम, नारीवादी होने के नाते, इतिहास के एक ऐसे रोमांचक मोड़ पर खड़े हैं जब जेंडर एवं लिंग की नई परिभाषाएं हमारी अपनी अवधारणाओं को पुनः परिभाषित करने पर मजबूर कर रही हैं। इससे उठने वाले जटिल सवालों के उत्तर ढूंढना असान नहीं है। खासकर ऐसी स्थिति में, जहां नारीवाद की पारंपरिक परिभाषा पर ही प्रतिघात हो रहे हैं। कोशिश यह है कि अब तक विकसित हुई समझ खोए बिना आगे का रास्ता ढूंढा जाए।

इसका सबसे सकारात्मक पहलू यह है कि यौनिकता एवं जेंडर से जुड़े मुद्दे धीरे-धीरे, लेकिन निरंतर बदलाव की नई राजनीति का हिस्सा बनते जा रहे हैं। आज हमारे सामने केवल यह उद्देश्य नहीं है कि विविध यौनिकताओं और जेंडर के परिपेक्ष्य में दुनिया को और तुल्य तथा न्यायोचित बनाया जाए, बल्कि यह भी कि यौनिकता एवं जेंडर की सामाजिक-राजनैतिक और सांस्कृतिक परिभाषाएं भी बदलें।

हिंदी अनुवादः निधी अग्रवाल